कौन अमूर्त विचार करता है?[1]
जॉर्ज विल्हेम फ़्रेडरिक हेगेल, 1808

सुरेश चौहान
दर्शनशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

यह लेख जर्मन दार्शनिक हेगेल के निबंध का पहला हिंदी अनुवाद है। एक आरंभिक प्रयास के रूप में, इसका उद्देश्य हिंदी में हेगेल के मूल लेखों की गंभीर कमी को दूर करना है। एक समाचार पत्र के लिए लिखे गए निबंध के रूप में यह लेख हेगेल की कई केंद्रीय दार्शनिक अवधारणाओं को बेहद सरलता और सुगमता के साथ प्रस्तुत करता है। इसके कारण यह हेगेलीय चिंतन का एक उत्तम परिचय भी है। इस निबंध का मुख्य केंद्र "अमूर्त विचार" की आलोचना है, जिससे हेगेल का आशय, सरल शब्दों में, एकांगी और अपचयी चिंतन से है। इस प्रक्रिया में हमें हेगेल के गहन विचारों और उनके व्यापक दार्शनिक क्षितिज की एक सघन झलक प्राप्त होती है, जिसमें तर्कशास्त्र, तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नैतिकता, समाज, राजनीति, साहित्य, आदि अनेक क्षेत्र सम्मिलित हैं।

कीवर्ड्स: हिंदी में हेगेल, अमूर्त विचार, जर्मन भाववाद, पाश्चात्य दर्शन, द्वंद्ववाद

परिचय

पाश्चात्य दार्शनिक साहित्य के मूल ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद संभवतः आज भी किसी विचारणीय अवस्था में नहीं है। बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जिनसे आज भी हिंदी-भाषी जगत मात्र भाषा की सीमा के कारण वंचित है। इसमें एक बड़ा नाम आधुनिक जर्मनी के महान दार्शनिक जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल का है, जिनका,

---

आभार: मैं इस पूरी प्रक्रिया में अपने कुछ मित्रों और संपादक महोदय का उनके सुझावों व सहायता के लिए अत्यंत आभारी हूँ। उनकी सहायता के बिना संभवतः यह निबंध इतनी जल्दी प्रकाशित नहीं हो पाता। इसके बावजूद भी अगर कोई कमी या त्रुटि रह गई हो तो उसका संपूर्ण उत्तरदायित्व मेरा है।

[1] यह अनुवाद मुख्यतः Marxist Internet Archive पर उपलब्ध जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल के 1808 में प्रकाशित निबंध "Who Thinks Abstractly?" के अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित है। उक्त अंग्रेज़ी पाठ मूल जर्मन से वॉल्टर कॉफ़मैन द्वारा अनूदित है, जो *Hegel: Texts and Commentary* (Garden City, NY: Anchor Books, 1966, pp. 113–118) में प्रकाशित हुआ था। ऑनलाइन संस्करण Marxist Internet Archive से लिया गया है [https://www.marxists.org/reference/archive/hegel/works/se/abstract.htm accessed on 25 सितंबर 2025. यह पाठ Attribution–ShareAlike 2.0 लाइसेंस के अंतर्गत प्रयुक्त किया गया है]।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, आज तक कोई भी मूल लेखन हिंदी में प्रकाशित नहीं हुआ है। उनका दार्शनिक लेखन जितना वृहद है, उतना ही जटिल भी है, जिससे निश्चित ही उसका अनुवाद एक कठिन कार्य बन जाता है; लेकिन मात्र कठिनाई के कारण इस कार्य को सदा के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता।

हम सभी किसी न किसी रूप में हेगेल के नाम से परिचित हैं। हेगेलीय भाववाद (Idealism) और द्वंद्ववाद (Dialectics) उनके सबसे प्रसिद्ध सिद्धांत हैं। उनके दर्शन ने आधुनिक दर्शन के इतिहास में एक क्रांतिकारी भूमिका निभायी है। इस महान चिंतक के परोक्ष व प्रत्यक्ष प्रभाव का यह मात्र एक छोटा-सा उदाहरण है कि सभी उत्तर-हेगेलीय दार्शनिकों और विचारकों को हेगेल के दर्शन से जूझना पड़ा है, चाहे वह सकारात्मक या नकारात्मक ढंग से हो। लेकिन इस सर्वव्यापी उपस्थिति के बावजूद, हेगेल के मूल लेखन का हिंदी में अभाव है। इसका कारण केवल दार्शनिक और भाषाई कठिनता एवं जटिलता ही नहीं, बल्कि अन्य कारण भी होंगे, जिनकी वस्तृत चर्चा हम यहाँ नहीं कर सकते हैं। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि यह अभाव मिटना चाहिए, क्योंकि भाषा की सीमा विचारों की भी सीमा बन जाती है, और यह सीमा मिटनी चाहिए। यह लेख इसी दिशा में एक छोटा, विनम्र और प्रथम प्रयास है। निश्चित ही इसमें कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं, जैसा किसी भी नवीन प्रयास में अवश्यम्भावी है, लेकिन साथ ही इससे प्रयास और सुधार के द्वार भी खुलेंगे।

यहाँ हम हेगेल का कोई बड़ा लेखन नहीं, बल्कि एक संक्षिप्त निबंध प्रस्तुत कर रहे हैं, जो उन्होंने एक स्थानीय समाचार पत्र के लिए लिखा था। इसकी भाषा हेगेल के अन्य लेखन से सापेक्षतः सरल और लोकगम्य है; लेकिन विचारों का गुरुत्व भाषा की सरलता में कहीं भी हल्का नहीं होता, उल्टे और अधिक उभरकर सामने आता है, क्योंकि यह पाठक से सहज सम्बद्ध स्थापित करने में सफल होता है। इस छोटे से लेख में हमें हेगेल के दार्शनिक विचार की तीव्रता, उनके साहित्यिक लेखन-कौशल, उनकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना, उनके अतिअमूर्त दार्शनिक सिद्धांतों का दैनिक जीवन से सम्बन्ध, इत्यादि की एक सघन झलक देखने को मिलती है। इस लेख में उपस्थित कई अवधारणाएँ, जो हेगेल के परिपक्व दर्शन में खुलकर आते हैं, अपनी भ्रूण अवस्था में देखे जा सकते हैं।

यहाँ मैं कुछ कुंजीभूत शब्दों पर संक्षेप में बात करना चाहूँगा। इस निबंध के शीर्षक "Wer denkt abstrakt?" ("Who Thinks Abstractly?") में जो दो शब्द मूल जर्मन प्रयोग हुए हैं, वह हैं: "*denkt*" और "*abstrakt*," जिनका अंग्रेजी में अनुवाद "thinks" और "abstract" के रूप किया जाता है। दोनों ही शब्द दार्शनिक रूप से अत्यंत महत्ववपूर्ण हैं। यहाँ मैंने "*denkt*" के लिए "विचार" शब्द चुना है, क्योंकि मेरे विचार में यह उस सक्रिय प्रक्रिया को सबसे बेहतर ढंग से सम्प्रेषित करता है, जिसकी ओर हेगेल संकेत करते हैं । एक और शब्द "चिंतन" यहाँ प्रयोग किया जा सकता था, किन्तु हेगेल के दर्शन में एक अन्य अवधारणा "consciousness" है, जो "thinking" से भिन्न है, "चेतना" एवं "चिंतन" के निकट है।

"Abstract" एक ऐसा शब्द जिसे सुनते ही दर्शन और सिद्धांत की गंध आने लगती है, और ऐसा उचित भी है, क्योंकि यह वैसा ही है। हिंदी में इसके लिए "सूक्ष्म," "निराकार," "गूढ़," इत्यादि जैसे शब्द प्रयोग किये जा सकते हैं, लेकिन "अमूर्त" ही हेगेल के अर्थ के सबसे निकट ज्ञात होता है। लेकिन यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि पाश्चात्य दार्शनिक इतिहास में इस शब्द का जो पारम्परिक अर्थ था, हेगेल में इसका अर्थ उससे भिन्न हो जाता है, जिसकी विस्तृत चर्चा यहाँ नहीं की जा सकती है। संक्षेप में, यहाँ "अमूर्त" से हेगेल का अर्थ किसी वस्तु या विचार का इन्द्रिग्राह्य या ठोस न होना, और मात्र विचारों में स्थित होना बिल्कुल भी नहीं है। इसका सरल लेकिन गहन अर्थ मात्र इतना है: किसी वस्तु या विचार को जिन अन्तर्सम्बन्धों के समूह में वह विद्यमान है, उनसे और उसकी गति से काटकर, उसके किसी एक पक्ष का निरपेक्षीकरण कर, और उस एकपक्षीय अवस्थाबिंदु से उसके अन्य सभी गुणों को देखना। इसके विपरीत "मूर्त" (concrete) का अर्थ किसी भी वस्तु या विचार को संपन्न संबंधों, गति व रूपान्तरण में देखना है; पुनः, इसका सम्बन्ध किसी वस्तु के ठोस या दृष्ट होने से नहीं है। निश्चित ही इस निबंध में हेगेल अमूर्त 'विचार' के विरुद्ध खड़े हैं, लेकिन उनके दर्शन में इन दोनों अवधारणाओं के बीच जीवंत व द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध देखने को मिलता है, जिसके बीज इस लेख में भी देखे जा सकते हैं।

हेगेल का यह निबंध संभवतः आज और भी प्रासंगिक हो जाता है, जब हम अपने चारों ओर देख सकते हैं कि हेगेल जिन अर्थों में मात्र 'अमूर्त विचार' करने को एकांगी व दोषपूर्ण मानते हैं, वही हावी है। ऐसे में हेगेल का यह निबंध 'अमूर्त विचार' के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टि रखने के लिए दैनिक व सुलभ उदाहरणों के साथ एक गहन व महत्वपूर्ण दार्शनिक तर्क देता है।

अंत में, मैंने कुछ सीमित जगहों पर अनुवाद को शब्दशः न रखकर, रचनात्मक स्वतंत्रता लेकर, संदर्भानुसार वाक्य विन्यास किया है। पाठक की जानकारी और सुविधा के लिए आवश्यकतानुसार फुटनोट भी दिए हैं।

अनुवाद

विचार? अमूर्तन? भागो, अपनी जान बचाओ![2] जो स्वयं को बचा सकते हों बचा लें! मैं अभी भी एक चीखते द्रोही, जो शत्रु के हाथों बिक गया है, के मुँह से ये शब्द सुन सकता हूँ, जो इस निबंध की निंदा मात्र इसलिए करेगा, क्योंकि इसका विषय तत्वमीमांसा है। क्योंकि "तत्वमीमांसा" भी "अमूर्त" और लगभग "विचार" जैसा ही एक शब्द है, जिससे लोग ऐसे दूर भाग खड़े होते हैं जैसे किसी ऐसे व्यक्ति से, जो महामारी से ग्रस्त हो।

[2] यहाँ हेगेल ने फ्रांसीसी उक्ति *Sauve qui peut!* लिखा है, जिसका प्रयोग सामान्यतः ऐसी उथल-पुथल व भगदड़ की स्थिति में होता है, जहाँ हर कोई बस अपनी सुरक्षा के बारे सोच रहा हो।

लेकिन यहाँ हमारा उद्देश्य इतना भी कुटिल नहीं है कि हम 'विचार' और 'अमूर्त' के अर्थ की व्याख्या करें। इस महान दुनिया को व्याख्याओं से अधिक और कुछ भी असहनीय नहीं लगता। स्वयं मुझे भी इससे अधिक बुरा कुछ नहीं लगता कि कोई मुझे किसी चीज़ की व्याख्या दे, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर मैं स्वयं ही समझ जाता हूँ। और वैसे भी यहाँ 'विचार' और 'अमूर्त' को समझाना व्यर्थ होगा, क्योंकि यह महान दुनिया पहले से इनका अर्थ समझती है, और इसीलिए इनसे दूर भागती है। जैसे कोई किसी अज्ञात वस्तु की लालसा भी नहीं कर सकता है, वैसे ही वह उससे धृणा भी नहीं कर सकता। और न ही यहाँ मेरा उद्देश्य कुशलतापूर्वाक इस महान दुनिया और 'अमूर्त' या 'विचार' का मेल कराना है, मानो इन दोनों को, बातों ही बातों में, सबकी दृष्टि और घृणा से बचाकर समाज में चुपके से ले आया गया हो; और समाज द्वारा अनजाने में ही अपना लिया गया हो, या जैसा कि स्वाबियावासी कहते हैं—किसी वस्तु में रच बस गए हों[3]—और अंत में जाकर लेखक ने इस रहस्य को उजागर किया हो कि ये अनोखे अतिथि कोई और नहीं, बल्कि श्रीमान 'अमूर्त' हैं, जिन्हें अब तक सभी एक भले और पुराने परिचित के रूप में किसी और नाम से जान रहे थे। लेकिन ऐसे कारनामे, जो दुनिया को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ सिखाना चाहते हैं, दोहरे अक्षम्य दोषों से ग्रसित होते हैं: एक तो वे स्वयं को ही लज्जित करते हैं, और दूसरा, इस कारनामे से प्रसिद्धि की भी लालसा रखते हैं; लेकिन ये लज्जा और अहंकार इच्छित प्रभाव को नष्ट कर देते हैं, क्योंकि ये ऐसे मूल्य पर प्राप्त ज्ञान को अवांछित बना देते हैं।

निश्चित ही ऐसी कोई योजना आरम्भ से ही नष्ट होने के लिए अभिशप्त है, क्योंकि इसका आधार ही यह है कि सबसे निर्णायक शब्द बोला ही न जाए। लेकिन यह तो पहले ही निबंध के शीर्षक में हो चुका है। अगर इस निबंध की कोई चंचल-चतुर भावना होती, तो उन शब्दों को शीर्षक में ही स्थान नहीं मिलता, बल्कि वह किसी हास्य-नाटक में एक कैबिनेट मंत्री की तरह पूरे नाटक के दौरान मंच पर अपना कोट पहने घूमता रहता है, और केवल अंत में अपने कोट के बटन खोलकर अपने ज्ञान के चमकते सितारे को प्रकट करता। हालाँकि इस तत्वमीमांसीय बटन का खुलना उतना प्रभावशाली नहीं होता, जितना मंत्री के ओवरकोट के बटन का होता; क्योंकि इस तत्वमीमांसीय बटन के खुलने से सिवाय कुछ शब्दों के और कुछ नहीं उजागर होता। और सोने पर सुहागा यह होता कि समाज पहले से ही इन शब्दों को जानता है; सो अंत में उसे जो मिलता है, वह एक नाम मात्र के अतिरिक्त कुछ और नहीं होता। लेकिन वहीं मंत्री का रहस्योद्घाटन सच में कुछ उजागर करता – जो होती पैसे की पोटली।

किसी अच्छे समाज में यह मानकर चला जाता है कि सभी लोग यह जानते हैं कि 'विचार' और 'अमूर्तन' क्या है; और हम निश्चित ही एक अच्छे समाज में हैं। प्रश्न बस इतना है कि कौन अमूर्त विचार करता है। जैसा कि

[3] यहाँ मूल जर्मन में जो शब्द प्रयोग हुआ है, वह "*hereingezäunselt*" है, जो एक स्वाबियाई शब्द है, जिसका प्रयोग सामान्य जर्मन में नहीं होता। मूल रूप से इसका सम्बन्ध "*zuan*" शब्द से है, जिसका सम्बन्ध "fence" से है; लेकिन यहाँ यह 'टोकरी-बुनाई' की भाषा से आया हुआ है, और इस संदर्श में इसका अर्थ 'किसी (वस्तु) में बुना हुआ,' जैसे कोई धागा किसी कपडे में या कोई फीता बालों में बना हुआ होता है। मैं इस जानकारी के लिए अपनी मित्र इज़ा जैकब्स का आभारी हूँ।

पहले ही बताया जा चुका है, हमारी मंशा समाज और इन चीज़ों के बीच तालमेल बिठाना नहीं है, न ही उससे यह अपेक्षा करना है कि वह ऐसे कठिन विषयों से जूझे, या फिर उसकी अंतरात्मा से अपील की जाए कि वह ऐसी चीज़ें, जो तार्किक प्राणियों के बीच स्थान और प्रतिष्ठा रखते हैं, उनकी उपेक्षा न करे। मेरी मंशा बस इस सुन्दर दुनिया को स्वयं उससे ही मिलवाना है, हालाँकि उसकी इस उपेक्षा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है। बल्कि कहीं गहरे में, समाज अमूर्त विचार को महान समझकर उसके प्रति आदर रखता है, और वह उससे मुँह इसलिए नहीं फेरता क्योंकि वह उसके अमूर्त विचार को तुच्छ समझता है, बल्कि इसलिए क्योंकि वह उसे उच्च समझता है; इसलिए नहीं कि उसे बहुत औसत समझता हो, बल्कि इसलिए कि उसे बहुत महान समझता है; या फिर यह कह सकते हैं कि एक अलग ही प्रकार की चीज़ है। यह नये कपड़ों जैसी कोई वस्तु नहीं प्रतीत होती, जो किसी को आम समाज में विशिष्ट बनाती हो; बल्कि कुछ ऐसा है जो किसी को समाज से बाहर कर देता है या उसका मज़ाक बना देता है, जैसे फटे पुराने कपड़े या मणियों से सुसज्जित कढ़ाई किये हुए कपड़ों में कोई अमीर व्यक्ति, जो विचित्र विदेशी[4] जैसा लगने लगे और समाज में उपहास का पात्र बन जाए या उससे बहिष्कृत कर दिया जाए।

तो कौन अमूर्त विचार करता है? अशिक्षित, न कि शिक्षित। अच्छा समाज अमूर्त विचार नहीं करता, क्योंकि यह बहुत सरल है, बहुत तुच्छ है (उसके बाहरी ओहदे की बात न करते हुए) — कुलीनता के किसी ऐसे थोथे दिखावे के कारण नहीं, जो स्वयं को उस चीज़ से ऊँचा दिखाता है जिसे वह करने में सक्षम नहीं है, बल्कि इसलिए क्योंकि वह वस्तु ही आंतरिक रूप से तुच्छ है।

अमूर्त विचार के प्रति पूर्वाग्रह और आदर इतना अधिक है कि संवेदनशील नाक वाले लोगों को अब तक किसी व्यंग्य की गंध आ गयी होगी; लेकिन चूँकि वे सुबह समाचार पत्र पढ़ते हैं, इसलिए उन्हें पता होगा कि व्यंग्य लिखने के लिए अलग पुरस्कार मिलता है, और अगर मुझे यही करना होता, तो बेहतर होता मैं वहाँ लिखकर शीघ्र ही अपना पुरस्कार प्राप्त करता।

मुझे अपनी प्रस्थापना के लिए यहाँ बस उदाहरण देने होंगे — और सब मेरी बात से सहमत होंगे। किसी हत्यारे को फँसी के फंदे पर ले जाया जा रहा है। सामान्य जनता के लिए वह एक हत्यारे के सिवा कुछ भी नहीं है। शायद स्त्रियाँ यह बोलें कि वह शक्तिशाली, सुन्दर और आकर्षक पुरुष है। सामान्य जनता को यह बात भयानक लगती है — क्या? एक सुन्दर हत्यारा? किसी के मन में ऐसा निकृष्ट विचार आ भी कैसे सकता है कि किसी हत्यारे को सुन्दर बोले; निश्चित तुम भी वैसे ही होगे! कोई पादरी, चूँकि वह संसार और मानव हृदय के गूढ़ रहस्यों से परिचित है, यह कह सकता है कि यह उच्च वर्गों के बीच फैला नैतिक पतन है।

[4] यहाँ हेगेल “quasi-Chinese" (अर्ध-चीनी/चीनी जैसा) लिखते हैं, जिसका प्रयोग, संभवतः अपमानजनक लक्ष्यार्थ के साथ, वे “विचित्र विदेशी व अप्रचलित" के पर्यायवाची के रूप में करते हैं।

जो लोगों को समझता है, वह अपराधी के मानस के विकास की पड़ताल करता है: वह उसके इतिहास में, उसकी शिक्षा में, उसके माता-पिता के बीच के ख़राब पारिवारिक सम्बन्ध पाता है; वह यह पाता है कि किसी छोटे-से दोष के लिए इस व्यक्ति को बहुत कठोर दंड मिला है, जिसके चलते वह पूरे सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध हो गया होगा — इस परिस्थिति में उसकी पहली प्रतिक्रिया ने उसे समाज से बाहर कर दिया, और अपराध के बिना उसका जीना असंभव कर दिया। यह सुनने पर कुछ लोग ऐसा भी कह सकते हैं कि यह इस हत्यारे को दंडमुक्त या पापमुक्त करना चाहता है! मुझे याद है, कैसे मेरी किशोरावस्था में एक मेयर इस बात पर विलाप कर रहा था कि पुस्तकों के लेखक बहुत आगे जा रहे हैं, और ईसाईयत और नैतिकता को जड़ से समाप्त कर देना चाहते हैं; किसी ने आत्महत्या के पक्ष में लिखा था; भयंकर, घोर भयंकर! थोड़ी जांच-पड़ताल करने पर यह पता चला कि यह हमला गोएथे की रचना *द सफरिंग्स ऑव वर्थर*[5] पर था।

यही है अमूर्त विचार: इस अमूर्त तथ्य के सिवाय कुछ न देखना कि वह एक हत्यारा है, और उसके अन्य समस्त मानवीय सार को इस सरल गुण में अपचयित कर देना।

यही कार्य भावुक, परिष्कृत समाज – लीपज़िग[6] में – काफ़ी अलग ढंग से होता है। वहाँ वे उस पहिये और उस पहिये से बँधे अपराधी पर फूल बरसाते हैं। लेकिन यह फिर से अमूर्तन ही है, हालाँकि विपरीत ढंग से। हो सकता है कि ईसाई रोज़िक्रूसियनपंथ, या यूँ कहें कि सूली-गुलाबवाद,[7] के साथ खिलवाड़ करें, और सूली पर गुलाब लगा दें। सूली फाँसी का वह तख्ता और पहिया है जो बहुत पहले पवित्र हो गया है। इसने अपमानजनक दंड होने का एकपक्षीय महत्त्व खो दिया है, और, पूर्णतः विपरीत, उच्चतम पीड़ा और गहनतम त्याग के साथ-साथ महानतम आनंद और दिव्य आदर का प्रतीक बन गया है। वहीं दूसरी ओर लीपज़िग में, फूल-पत्तियों से सुसज्जित पहिया, कोत्ज़ेबू[8] की भाँति, एक समझौता है, जैसे भावुकता और अशुभ के बीच एक फूहड़ सामाजिकता हो।

एक बार मैंने एक अस्पताल में एक सामान्य बूढ़ी स्त्री को एक अलग ढंग से हत्यारे के इस अमूर्तन की हत्या करते और उसे सम्मान का जीवन देते देखा था। हत्यारे का कटा हुआ सर तख्ते पर रख दिया गया था और सूर्य चमक रहा था। यह देखकर उस बूढ़ी औरत ने कहा, “ईश्वर की कृपा का सूर्य कितनी सुंदरता से उसके सर पर चमक रहा है!” “तुम इस प्रकाश के योग्य नहीं हो,” कोई और उस दुष्ट, जिससे वह गुस्सा है, से कहता

---

[5] *द सफरिंग्स ऑव वर्थर* (*The Sufferings of Werther*) जर्मन कवि व कथाकार गोएथे का उपन्यास है, जिसमें आत्महत्या क वर्णन है, जो 1774 में प्रकाशन के बाद जितना प्रभावशाली उतना ही विवादस्पद भी था।

[6] जर्मनी का एक शहर।

[7] रोज़िक्रूसियनपंथ 17वीं शताब्दी का एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन था, जो जर्मनी में शुरू हुआ था। इनका प्रतीकचिन्ह पारम्परिक ईसाई सूली पर गुलाब का फूल था।

[8] कोत्ज़ेबू (1761-1819) एक जर्मन नाटककार था, जिसके प्रति, ऐसा प्रतीत होता है, हेगेल आलोचनात्मक मत रखते थे।

है। उस स्त्री ने देखा था कि सूर्य का प्रकाश उस हत्यारे के सर पर पड़ रहा था, जिसका अर्थ यह था कि वह अब भी उसके योग्य है। उसने उस सर को तख्ते के दंड से उठाकर ईश्वर की प्रकाशमयी शोभा में रख दिया, और उसका फूल-पत्तों और भावुक आत्म-तुष्टि से मेल कराने के बजाय, उसे उच्चतर सूर्य की शोभा में स्वीकार होते हुए देखा।

"बूढ़ी स्त्री, तुम्हारे अण्डे सड़े हुए हैं!" नौकरानी दुकानकार स्त्री से कहती है। "क्या?" वह उत्तर देती है, "मेरे अण्डे सड़े हुए हैं? तुम सड़ी हुई होगी! तुम मेरे अण्डों के बारे में यह कहती हो? तुम? क्या तुम्हारे बाप को सड़कों पर जुओं ने नहीं काट खाया था? क्या तुम्हारी माँ उस फ्रांसीसी के साथ नहीं भाग गयी थी? और क्या तुम्हारी दादी एक सरकारी अस्पताल में नहीं मर गयी थी? उसको पहले उस फटे पुराने दुपट्टे की जगह एक कमीज़ लेने दो; सबको पता है उसको यह दुपट्टे और टोपियाँ कहाँ से मिलती हैं: अगर उन अफसरों की सेवा न कर रही होतीं, तो आजकल बहुत-सी औरतें ऐसे सज-संवर के न घूम रही होतीं, और अगर इनकी मालकिनों ने घरबार पर और ध्यान दिया होता, तो बहुत-सी आज जेल में होतीं। उसको पहले अपने सलवार की छेद सिलने दो, फिर बात करना!" संक्षेप में, वह कोई भी दांव नहीं छोड़ती। वह अमूर्त विचार करती है, और दूसरी स्त्री – उसका दुपट्टा, टोपी, कमीज़, इत्यादि, और उसकी उँगलियाँ व उसके अन्य अंग, और उसके पिता और यहाँ तक की उसका पूरा परिवार भी – को एकमात्र इस अपराध, कि उसको अण्डे सड़े हुए लगे, के अधीन कर देती है। उसके लिए समस्त ही इन सड़े हुए अण्डों से पूरी तरह रंग गया है, वहीं उन अफसरों, जिनकी बात स्वयं इस स्त्री ने की—हालाँकि इस बात की सच्चाई पर गंभीर संदेह किया जा सकता है—के लिए स्थिति काफी भिन्न रही होगी।

अब नौकरानी से अगर हम नौकर पर आएँ, तो उस नौकर से बदतर कोई और नहीं है, जिसका मालिक निम्न वर्ग और निम्न आय वाला है; और वह उतनी ही बेहतर अवस्था में होगा जितना बेहतर उसका मालिक होगा। साधारण व्यक्ति यहाँ और अधिक अमूर्त विचार करता है: वह स्वयं को नौकर की तुलना में कुलीन समझता है, और स्वयं को नौकर के सम्बन्ध में केवल मालिक के रूप देखता है; वह इस एकांगी विधेय दृष्टि से चिपका रहता है। फ्रांसीसियों के बीच नौकर उच्चतम अवस्था में रहते हैं। एक सामान्य कुलीनजन केवल अपने नौकर से परिचित होता है, लेकिन एक फ्रांसीसी के लिए उसका नौकर उसका मित्र है। जब वह अकेले होते हैं, तब नौकर बात करता है: इसका उदाहरण दिदेरो का [उपन्यास] *जैक्स और उसका मालिक*[9] है; मालिक कुछ नहीं बस मज़े करता है, और समय काटता है, और बाक़ी सब नौकर को करने देता है। उसको ज्ञात है कि नौकर केवल नौकर नहीं है, पर एक व्यक्ति है जो शहर, लड़कियों, इत्यादि के बारे में जानकारी रखता है, और समझदार सुझाव भी दे सकता है; मालिक उससे इन विषयों के बारे में पूछता है, और नौकर को जो भी पता होता है, वह बताता भी है। एक फ्रांसीसी मालिक के यहाँ नौकर केवल यही नहीं कर सकता है; बल्कि वह

[9] फ्रांसीसी दार्शनिक व साहित्यकार देनिस दिदेरो का उपन्यास *Jacques le fataliste et son maître* (*Jacques the Fatalist and his Master*)। हेगेल यहाँ *Jacques et son maître* (*Jacques and His Master*) लिखते हैं।

किसी विषय पर चर्चा भी शुरू कर सकता है, अपने स्वतंत्र मत भी रख सकता है, और उन पर दृढ़ भी रह सकता है; और जब मालिक को कुछ चाहिए हो, तो वह मात्र आज्ञा देकर नहीं, बल्कि बहस करके और नौकर को अपनी राय से सहमत करने के बाद ही करा सकता है। इस सब में यह ध्यान रखते हुए कि उसका मत तार्किक है, इसलिए मानने योग्य है।

सेना में भी हमें यही अंतर देखने को मिलता है। ऑस्ट्रिया में एक सैनिक को पीटा जा सकता है; मानो वह नीच है; क्योंकि जिस किसी के पास भी पीटे जाने का 'निष्क्रिय अधिकार' है, वह नीच है। इसलिए एक सामान्य सैनिक, एक अफसर के लिए इस पीटे जा सकने वाले व्यक्ति के अमूर्तन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस समस्या [अमूर्त सैनिक] के साथ एक वर्दी और बेल्ट वाले अफसर को जूझना पड़ता है – और यह काम किसी से शैतान के साथ भी संधि करवा सकता है।

संदर्भ सूची

Diderot, Denis. *Jacques le fataliste et son maître.* Présenté par Jean Dutourd. Paris: Éditions Gallimard et Librairie Générale Française, 1961.

Goethe, Johann Wolfgang von *Die Leiden des jungen Werthers.* Edited by E. L. Stahl. Oxford: Basil Blackwell, 1944.

Hegel, G. W. F.. *Hegel: Texts and Commentary.* Translated and edited by Walter Kaufmann. Garden City, NY: Doubleday Anchor Books, 1966.